सामायिक-स्वाध्याय महान्

☐ श्री भँवरलाल पोखरना

मानव देव एवं दानव के बीच की कड़ी है। वह अपनी सद्वृत्तियों के द्वारा देवत्व को प्राप्त कर सकता है और असद्वृत्तियों के द्वारा दानव जैसी निम्न कोटि में भी पहुँच सकता है। मनुष्य के पास तीन महान् शक्तियाँ हैं— मन, वचन एवं काया। इन तीन शक्तियों के बल पर वह प्रशस्त-अप्रशस्त, चाहे जैसा जीवन बना सकता है, लेकिन आज वह इस आधुनिक चकाचौंध में फँसकर विषय-वासना के भोग का कीट बन गया है। वह इस विज्ञान जगत की यांत्रिक शक्ति से प्रभावित होकर अपनी आध्यात्मिक महान् शक्ति से परे हट गया है।

मानव इस मन, वचन, काया की शक्ति के अलावा भी एक महान् विराट् शक्ति का स्वामी है, जिससे वह अनभिज्ञ होकर दिनोंदिन कंगाल बनता जा रहा है। जिस प्रकार इस आधुनिक विज्ञान को समझने के लिये साहित्य है, विद्यालय हैं और अध्यापक हैं, उसी प्रकार इस आध्यात्मिक विज्ञान को समझने के लिये भी दूसरे प्रकार का साहित्य है, विद्यालय हैं और दूसरे ही आध्यात्मिक गुरु हैं। जिस तरह इस सांसारिक विद्या को पढ़कर हम डॉक्टर, कलक्टर, बैरिस्टर आदि बनते हैं, पर ये पद तो इस जीवन के पूरे नहीं होने से पहले ही समाप्त हो जाते हैं अथवा इस जीवन में इन्द्रियों के पोषण के सिवाय कुछ नहीं मिलता है और यह विद्या भी इस जीवन के साथ समाप्त हो जाती है। न पद रहता है न विद्या। और यह सांसारिक विद्या इस जीव का संसार बढ़ाती ही रहती है। परन्तु आध्यात्मिक विद्या तो हमको श्रावक, साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त एवं सिद्ध तक बना देती है। इन पदों की महत्ता इतनी है कि संसार के सारे डॉक्टर, कलक्टर, बैरिस्टर आदि सब पदाधिकारी इन पदाधिकारियों को नमन करते और चरणों की रज झाड़ते हैं, और यह पद जीवन में कभी समाप्त नहीं होता और जितनी विद्या आत्मसात करली जाती है वह इस जीवन के साथ समाप्त नहीं होती, अगले जीवन के साथ चलती रहती है, जीव चाहे किसी गति में विगति करता रहे।

स्वर्गीय आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० का यही उद्घोष था कि सामायिक-स्वाध्याय करके आत्मा का उत्थान करो। और उन्होंने इसी नारे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर पर बहुत बड़ा संघ खड़ा किया। उनके उपकार को संसार कभी नहीं भूलेगा। उन्होंने देश में घूम-घूम कर यही अलख जगायी (सामायिक-स्वाध्याय महान्)। जन-जन के कानों में इस मंत्र को फूंका। जिसने इस मंत्र को हृदयंगम किया है, उसका बेड़ा पार हुआ है। उन्होंने देश में इन स्वाध्याय संघों की एक शक्ति खड़ी करदी है जो आज इस मंच को चमका रही है। आचार्य हस्ती एक हस्ती ही नहीं एक महान् गंध हस्ती थे। उनकी वाक्गंध से लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। उन्होंने जैन जगत के सामने एक आदर्श उपस्थित किया। आचार्य पद पर इतने लम्बे काल तक रहकर सिंह के समान हुंकार करते हुए आचार्य पद को सुशोभित किया। उन्होंने इस मूलमंत्र को सिद्ध कर दिया कि सामायिक स्वाध्याय के मुकाबले कोई दूसरा मंत्र नहीं है जो किसी को तिरा सके।

सामायिक अपने आप में समत्व भाव की विशुद्ध साधना है। सामायिक में साधक की चितवृत्ति क्षीर समुद्र की तरह एकदम शांत रहती है, इसलिये वह नवीन कर्मों का बंध नहीं करती। आत्म स्वरूप में स्थिर रहने के कारण जो कर्म शेष रहे हुए हैं उनकी वह निर्जरा कर लेता है। आचार्य हरिभद्र ने लिखा है कि सामायिक की विशुद्ध साधना से जीव घाती कर्म नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

सामायिक का साधक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की विशुद्धि के साथ मन, वचन, काया की शुद्धि से सामायिक ग्रहण करता है। छः आवश्यकों में सामायिक पहला आवश्यक है। सामायिक के बिना षडावश्यक करना संभव नहीं है। और जो सामायिक होती है वह षडावश्यकपूर्वक ही होती है। सामायिक में षडावश्यक समाये हुए हैं। चाहे वे आगे-पीछे क्यों न हों। सामायिक व्रतों में नवां व्रत है। जब आठों की साधना होती है तो नवां व्रत सामायिक आता है, क्योंकि सामायिक में आठों व्रत समाये हुए हैं। जब साधक साधना मार्ग ग्रहण करता है तो पहले सामायिक चारित्र ग्रहण करता है क्योंकि चारित्रों में पहला चारित्र सामायिक है। शिक्षाव्रतों में पहला शिक्षाव्रत सामायिक है। पापकारी प्रवृत्तियों का त्याग करना सावद्य योग का त्याग है। इसी मूल पर सामायिक की साधना की जाती है। सामायिक का अर्थ है समता व सम का अर्थ है श्रेष्ठ और अयन का अर्थ आचरण करना है यानी आचरणों में श्रेष्ठ आचरण सामायिक है। विषमभावों से हटकर स्वस्वभाव में रमण करना समता है। समत्व को 'गीता' में योग कहा है। इसी कारण सामायिक की साधना सबसे उत्कृष्ट साधना है। अन्य जितनी भी साधनाएँ हैं, सब उसमें अन्तर्निहित हो जाती हैं। आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने सामायिक को चौदह पूर्व का अर्थ पिण्ड कहा है। आत्म स्पर्शता ही समता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जैसे रंग-बिरंगे खिले हुए पुष्पों का सार गंध है। यदि पुष्प में गंध नहीं और केवल रूप ही है तो वह दर्शकों के नेत्रों को तो तृप्त कर सकता है किंतु दिल और दिमाग को ताजगी नहीं प्रदान कर सकता है। उसी प्रकार साधना में समभाव यानी सामायिक निकाल दी जाय तो वह साधना निस्सार है, केवल नाम मात्र की साधना है। समता के अभाव में उपासना उपहास है। जैसे द्रव्य सामायिक व द्रव्य प्रतिक्रमण को बोलचाल की भाषावर्गणा तक ही सीमित रखा गया तो वह साधना पूर्ण लाभकारी नहीं है। समता का नाम ही आत्मस्पर्शना है, आत्मवशी होना है, समता आत्मा का गुण है।

'भगवती सूत्र' में वर्णन है कि पार्श्वापत्य कालास्यवेशी अनगार के समक्ष तुंगिया नगरी के श्रमणोपासकों ने जिज्ञासा प्रस्तुत की थी कि सामायिक क्या है और सामायिक का प्रयोजन क्या है ?

कालास्यवेशी अनगार ने स्पष्ट रूप से कहा कि आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का प्रयोजन है।

आचार्य नेमीचन्द्र ने कहा है कि परद्रव्यों से निवृत्त होकर जब साधक की ज्ञान चेतना आत्म स्वरूप में प्रवृत्त होती है तभी भाव सामायिक होती है।

श्री जिनदासगणी महत्तर ने सामायिक आवश्यक को आद्यमंगल माना है। अनन्त काल से विराट् विश्व में परिभ्रमण करने वाली आत्मा यदि एक बार भाव सामायिक ग्रहण करले तो वह सात-आठ भव से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करती। यह सामायिक ऐसी पारसमणि है।

सामायिक में द्रव्य और भाव दोनों की आवश्यकता है। भावशून्य द्रव्य केवल मुद्रा लगी हुई मिट्टी है, वह स्वर्ण मुद्रा की तरह बाजार में मूल्य प्राप्त नहीं कर सकती, केवल बालकों का मनोरंजन ही कर सकती है। द्रव्य शून्य भाव केवल स्वर्ण ही है जिस पर मुद्रा अंकित नहीं है, वह स्वर्ण के रूप में तो मूल्य प्राप्त कर सकता है किन्तु मुद्रा के रूप में नहीं। द्रव्ययुक्त भाव स्वर्ण मुद्रा है। इसी प्रकार भावयुक्त द्रव्य सामायिक का महत्त्व है। द्रव्यभाव युक्त सामायिक के साधक के जीवन में हर समय सत्यता, कर्तव्यता, नियमितता, प्रामाणिकता, और सरलता सहज ही होना स्वाभाविक है। ये सब आत्मा के गुण हैं। सामायिक के महत्त्व को बताते हुए भगवान् महावीर ने पुणिया श्रावक का उदाहरण दिया है। सामायिक से नरक के दुःखों से मुक्त हुआ जा सकता है। महावीर ने सच्ची सामायिक के मूल्य को कितना महत्त्व दिया है। सामायिक का साधक भेद विज्ञानी होता है। सामान्यतः सामायिक का करनेवाला श्रावक है और श्रावक का गुणस्थान पांचवां है और भेदविज्ञान चौथे गुणस्थान पर ही हो जाता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भेदविज्ञान आत्मा का ज्ञान है और यही सामायिक है।

स्वाध्याय तो जीवन का सार है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। स्वाध्याय सत्शास्त्रों का अध्ययन है जिसमें आत्मज्ञान निहित हो, उसी के पढ़ने से स्वाध्याय होता है। स्वाध्याय का सीधा सादा अर्थ स्व (आत्मा) का अध्ययन है। जितना स्वाध्याय करते हैं उसका ध्यान में चिंतन करना, मनन करना अथवा आचरण में लाना, उसको आत्मसात करना, यही स्वाध्याय का फल है। यदि स्वाध्याय नहीं करोगे तो आत्मा के स्वरूप को कैसे जानोगे? आत्मा के स्वरूप को जानने के दो मार्ग हैं। एक तो गुरु का उपदेश, दूसरा स्वाध्याय। हर समय, हर जगह, गुरु का सत्संग मिलना कठिन है। उसमें भी सद्गुरु की शोध कर उनका सत्संग करना ही सत्उपदेश है। वे ही आत्मा का स्वरूप बता सकते हैं जिन्होंने अपने में अनुभव कर लिया है। ऐसे सद्गुरु को प्राप्त करना सहज नहीं है।।

सत्गुरु का सत्संग तो बहुत कम मिलता है, परन्तु सत्शास्त्र उपलब्ध कर सकते हैं। घर बैठे ही गंगा है। शास्त्रों में ज्ञान गंगा की धारा प्रवाहमान है। जितनी साधक की योग्यता होती है उतना वह ग्रहण कर सकता है। यदि थोड़ा थोड़ा ही ग्रहण किया जाय और वह नियमित किया जाय तो बहुत बड़ा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सत्शास्त्रों का स्वाध्याय अंधेरे में प्रकाश है। पर केवल पढ़ लेना ही स्वाध्याय नहीं है, पढ़कर चिंतन-मनन करें और वह चिंतन अनुभव में लावें तो वह स्वाध्याय लाभकारी हो सकता है, अनुभव में लाना बहुत कठिन है। जितना पढ़ते हैं उतना चिंतन में नहीं आता और जितना चिंतन में आता है उतना अनुभव में नहीं आता। अनुभव तो छाछ के भांडे में से मक्खन जितना भी नहीं होता है।

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावे विश्राम।
रसस्वादत सुख उपजे, अनुभव याको नाम।।

जो अनुभव में लिया जाता है वहाँ पर मन की पहुँच भी नहीं है। वहाँ पर पहुँचने में मन भी छोटा पड़ जाता है। वह अनुभव वचक की अभिव्यक्ति का विषय भी नहीं है। वह तो आत्मा का विषय है और उस विषय को प्राप्त कराने में स्वाध्याय सहायक हो सकता है। यही स्वाध्याय का महत्त्व है।

—नवानियां (उदयपुर) राज०

□ □ □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org